मकान नंबर ४/४८

ऋषभ शुक्ला

एक आदमी है,
चुपके से उठता है,
अपनी लाश को धीमे से हिलाता है,
अडोल पाकर मन ही मन डरता है,
रात की खामोशी झंकझोर देती है,
तो दिन के शोर में दबने को उतारू है।
सोचता हूँ , बता दूँ उसको उसकी हालत,
पर डरता हूँ कहीं मुझपर ही हमला ना बोल दे।
उठता है, नित्य क्रिया कर दफ्तर की ओर ,
धीमे कदम बढ़ाता है, कान में ठेपी लगा ,
चढ़ जाता है अगली मेट्रो पर खुद को संवारे।
“साला आज वीकेंड है, दबा कर सोऊँगा” बोलकर ,
अंदर गाने चलते हैं, खबरें होती हैं,
वो ढूंढता है उन गानों में अपने आप को अभिनेता बनकर,
दर्द भी उसका, खुशी भी उसकी, गम भी उसको, अपना सा लगता है,
दूसरो का जूठन अब उसे पकवान सा लगता है।
ये लो,
दफ्तर पहुँच गया हमारा अभिनेता,
पहुँचकर हर रोज की तकल्लुफी करता है,
कहीं “ गुड मॉर्निंग” फेंक कर मारता है,
कहीं औपचारिकताओं में नकली हँसी लेकर,
पीक मारता है चलती दीवारों पर,और
अपने कुर्सी पर चल बैठता है।
कुर्सी, वही कुर्सी जिसको उसने कल छोड़ा था, रात में परिवर्तित हो कुर्सा बन गई है,
“उफ्फ ये जड़ता” सोचकर बैठकर दिन काटता है।
एक मालिक है, जो कहता है थोड़ा समय और गुलामी के दे दो मुझे,
देश की जीडीपी में अहम भूमिका निभाने वाले युवा,
थोड़ा और खून चाहिए कीबोर्ड की बटनों पर,
जोश भरकर वो भी दे दो मुझे

कहीं कोई पहचान न जाय तो ग्रंथों की आड़ लेकर शुद्ध बन जाता है।

“बी पॉजिटिव” का नारा देकर कुप्पा करता है।

सच कहूँ तो मन कर रहा है बता ही दूँ उसको उसकी हालत

बहरहाल देखो शाम हो आई है,

दफ्तर पॉश इलाके में हैं तो दो चार पेड़ खैरात में उग आए हैं,

गुलाम बस निकलते ही होंगे चाय पीकर वापिस तरोताजा बैठने को,

थोड़ी दृष्टि और ओझल, थोड़ा खून और सूख गया खुद को बहला लेने में,

जरा रुको,

हमारा अभिनेता कहाँ है?

वहाँ है चिड़ियों की आवाज सुनकर आज़ादी के सपने देखता,

थोड़ा छिल रहा है, थोड़ा डर रहा है,

अंदर ही अंदर कुछ बासी उसके अंदर सड़ रहा है,

देखना है अभिनेता बास मारते दफ्तर में नकली इत्र का कोना ढूँढ लेगा

या कि ?

देखो रात हो गई, दफ्तर पर ताला अब भी नहीं लगा,

मालिक गश्त पर आया है, नया जोश भरने आया है,

साथ में बड़े लोगों के कोट्स और लॉलीपॉप भी लाया है,

सबसे आगे वाले गुलाम पहले रीझते है,

पीछे वाले नए गुलाम इसपर थोड़ा खीझते हैं,

एक जोड़ी आँखें आज फिर थक कर बंद हो गई ।

वो लाश ढहकर बिस्तर पर गिर जाती है ,और

मासिक रुपए फ्लश में बहाकर ईमान बेच खाती है,

वैश्यालय फिर निरीह ही बदनाम हो जाते हैं,

सूट बूट पहने पुरुष जीत का झंडा गाड़ आते है

पर्दा उठ जाता है,

दर्शक ताली पीटते हैं,

निर्देशक चूना लगाकर जीडीपी गिनते है,

संगीतकार भक्ति में लीन करके जेब काटता है,

शिक्षा पद्धति नए लड़के के माथे पर “मूर्ख” साटता है।

कुर्सी और रोटी

भांडों ने महफिल जमा कर आका से पूछा,
किस दिशा में ठुमके लगाकर ,
आराम कुर्सी पर बैठे अंगूठेवीरों को बताऊँ ?,
बताऊँ कि भुखमरी से देश आजाद हो चुका है,
बताऊँ कि अब प्रजातियाँ विलुप्त नहीं हो रही हैं,
या कि बताऊँ अंत का प्रारंभ हो चुका है।
“क्या ज्ञान बाँचते हो, जीने दो ऐश करो” बोलकर युवा शराब गटकता है,
घूरता है छोटी स्कर्ट वाली लड़की के जाँघों को,
आँखों से इज्जत घोंटककर हवा में छल्ला बनाता,निंबू चाटकर घर चला जाता है।
नजर इधर पड़ी तो वृद्ध खोखली संस्कृति का बाजा बजा रहे थे,
दक्षिणपंथी वामपंथी की भिड़ंत चौराहे का पंचवर्षीय मुजरा बन गया था,
और भूखी जात फिर से पेट काटकर “सपने” पूरे करने शहर आ गए थे।
शहर की खड़ी अमीरी ने हिकारत भरी अंग्रेज़ी से स्वागत किया -
“जाने कहाँ -कहाँ से आ जाते हैं साफ सुथरे शहर को गंदा करने” ,
फिर खाने का थैला फेंककर सड़के साफ कर देता है।
पार्टियों में पर्यावरण की चिंता करने के बाद गहन विचार करते अफसर,
डीजल कार से टहलने जा रहे हैं कुत्ते को लेकर।
हड्डियों से नक्शा बना भिखारी गेट पर दिखता है,
मुँह बनाए अफसर की आँखों में मानो कूड़ा दिख गया हो ,
‘ बड़ी कुव्यवस्था है”, बोलकर कर्मी पाँच सौ का नोट अफसर की तोंद पर रखता है” ।
देश पुरानी गुलामी के हथकड़ियों से आजाद हो रहा था मानो।
मैने चपरासी से पूछा वर्तमान का आंकलन,
वो पसीना पोंछकर किस्मत के मुँह पर २ पीक मारता है,
“भूत और भविष्य का विकास हो चुका है”,
फोन निकल कर आका की तस्वीरें दिखाकर छाती फुला लेता है।
मैं देखता हूँ ,”भूख” हड्डियों के खाँचे से उठती है,
उठकर चौतरफा विकास पर कुल्ला कर देती है।

ऋषभ शुक्ला